International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746; Impact Factor: RJIF 5.34
Received: 22-01-2019; Accepted: 26-02-2019
www.alleducationjournal.com
Volume 4; Issue 2; March 2019; Page No. 90-95

ब्रिटिश कालीन : नारी जागरण के समर्थन में महिलाओं की भूमिका का अध्ययन

डॉ0 संजय कुमार मिश्रा
सहायक प्राध्यापक (इतिहास), एस.आर.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हनुमना, जिला रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
नारी जागरण के समर्थन में महिलाओं की भूमिका के संबंध में उनकी ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक भूमिका सम्यक विश्लेषण किया गया है। नारी जागरण के समर्थन में महिलाओं की भूमिका से संबंधित है। कोई भी आंदोलन या कोई भी सुधार तब तक सफल नहीं होता या लोगों की नजर में नहीं आता जब तक उसमें जिनके लिये सुधार के लिये मांग की गई उनकी एक बड़े पैमाने पर सशक्त भूमिका न हो। इस शोध अध्ययन में मैने इस अध्याय के दौरान पाया कि सामान्य नारियों का एक बहुत बड़ा वर्ग इस जागरण के लिये आवाज उठा रहा था। मैंने इस अध्याय को महत्वपूर्ण और विशिष्ट महिलाओं के 17वीं शताब्दी से ही योगदान को समर्पित किया है और कोशिश की है कि ईमानदारी के साथ सभी उन महिलाओं को जिक्र कर सकू जिनके कारण नारी की स्थिति में सुधार हुआ और नारी होने के नाते नारियों ने जिनके कारण गर्व का अनुभव किया इसमें कित्तुर रानी चिन्नमा, जो कर्नाटक में पैदा हुई और कित्तुर की रानी बनी और उन्होनें ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया के खिलाफ 1824 में एक सशस्त्र संघर्ष का नेतृत्व किया था। मैंने अपने इस अध्ययन में रानी अब्बका चौटा जो उलाल की रानी थी। 1525 से लेकर 1570 तक उनका काल निर्धारण किया जाता है और उन्होंने 16वीं शताब्दी के उत्तर्राद्ध में उपनिवेशवादि शक्तियों के खिलाफ उन्होनें संघर्ष का विगुल फूंकते हुए पुर्तगालियों के साथ संघर्ष किया उनका भी उल्लेख किया है।

मूल शब्द : ब्रिटिशकालीन, नारी जागरण, समर्थन, महिलाएँ।

प्रस्तावना
लता जी की एक मशहूर प्रार्थना है कि '' हम को मन की शक्ति देना, मन विजय करे, दूसरो की जय से पहले खुद की जय करे'' इंग्लिश में भी कहा गया है 'Charity begins from the home' तो जब नारी, नारी की पीड़ा समझेगी और उसके लिये उठ खड़ी होगी तो ही नारी जागरण जमीनी धरातल पर संभव हो सकेगा। यहां पर खुद की ''जय करने की बात है यदि नारी अपने में विश्वास नही करती खुद को अबला, असहाय, कमजोर समझती है तो कैसे वह किसी अन्य नारी की मदद कर सकेगी। वह नारी जागरण कैसे लायेगी जो खुद असहाय और बेबस है जिसको देखकर कह दिया जाता है ''अबला और बेबस'' अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आंखो में है पानी'' इस नारी के रूवरूप को बदलना होगा, इस नारी को परिवर्तित होना होगा लेकिन सिर्फ कपड़ो और अपनी उच्श्रृखंलता से नही वरन् तन–मन और बुद्धि से जब नारी आधुनिक होगी तभी नारी सही अर्थो में आधुनिक नारी बन पायेगी।

नारी जब तक खुद सशक्त नही होगी तब तक नारी जागरण एक दिवास्वप्न की तरह रहेगा या उस क्षितिज की तरह रहेगा जहां आकाश और जमीन मिलन का आभास देते हुए भी कभी नही मिलते।[1] नारी जागरण के साथ भी ऐसा ही छलावा होगा क्या? हो ही रहा है, नारी को उत्पाद बना दिया गया इंच मात्र के कपड़ो में फैशन कैलेन्डर निकालना बड़े पूंजीपतियों का सगल बन गया है। नारी ऑफिस में काम करने लगी, नारी स्कूटी चलाने लगी, कार चलाने लगी और उसने सोचा नारी तो आधुनिक हो गई लेकिन दुर्भाग्य की बात रही ऐसा कुछ भी नही हुआ यह एक छलावा है, नारी को छलने का, नारी की मुक्ति नारी के रूप में ही होगी। नारी का जागरण नारी के रूप में ही होगा ना कि पुरूषों की तरह नकल करकर, बहुत बड़े कवि जयशंकर प्रसाद जी ने लिखा है कि ''नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नभ पग तल में, पीयुश स्त्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में '' नारी के लिये कितने उच्च विचार लेकिन यही शायद सबसे बड़ी भूल हुई हमने कुछ नारियों को तो देवत्व, माँ, श्रद्धा और सम्मान देकर पूजा का विषय बना दिया और बाकी नारियों को हमने एक उत्पाद बना दिया और नारी सोच रही है यही नारी जागरण है, काश नारियों को समझ में आ जाता कि क्या पुरूषों का भी ऐसा जागरण हुआ है कि वे चड्डी पहनकर घूमें और उसी को फैशन बताकर पुरूष की आजादी का दावा करें। मेरे प्रभू ! मेरे भगवान !! इन विचारों से नारियों को बचाओं, इन्हें सिखाओं जब उनकी आंतरिक शक्ति सबल होगी और शरीर मजबूत होगा। मन दिमाग बंधन के सारे दरवाजे तोड़कर मुक्त गगन में विचरण करे तभी नारी जागरण संभव है, दूसरों के भरोसे नारी जागरण की बात सोचना या उसे संभव बनाना असंभव है, नारी को नारी जब नारी ही सम्मान देगी, उसका अधिकार देगी, तो नारी जागरण सिर्फ कागजों में सिमट कर नही रह जाएगा बल्कि हकीकत के धरातल पर एक चलते–फिरते सच की तरह नजर आएगा।[1]

आज भी हम संसंद में देखते है कि देश की आधी आबादी को देश की ही संसद में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पा रहा है, जिसके कारण संसदीय सीटों पर महिला आरक्षण विधेयक लाया गया। लेकिन उसका क्या हाल हुआ। ये आप सभी जानते है नेताओं का दोगला चरित्र कि उनकी राजनीति के क्षेत्र में आरक्षण न हो। लेकिन यही राजनेता चाहते है कि नौकरी के क्षेत्र मे, गुणवत्ता, ज्ञान योग्यता, सभी चीजों से समझौता करके नौकरी दी जाये ताकि उनका वोट बैंक बढ़ सके। 10 साल के लिये लाया गया आरक्षण आज भी बदस्तूर जारी है वे भी तीन गुना चार गुना ज्यादा होकर ये विधेयक जब नवीनीकरण के लिये लाये जाते है तो यही नेता मेज पीट–पीटकर विधयेक को बिना किसी चर्चा के पास कर देते है। लेकिन जब नारियों को सत्ता में हिस्सेदारी देने की बात आती है तो नेता गिरगिट की तरह दोहरे मापदण्ड क्यो अपनाते हैं ? कब तक आप वस्तुस्थिति स्वीकार न करके, गलतफहमियों में जीते हुए सुखी होने का नाटक करेगें। आपने आरक्षण नही दिया हमारे देश की सबसे कर्मठ जातियों को आपने

तो विष बेला बोई है। जिसका अंजाम क्या होगा खुदा भी नही जानता। पोलियो तो इस देश से चला गया लेकिन भगवान जाने वह दिन कब आएगा जब आरक्षण नाम का पोलियो देश से दूर भागेगा। अपात्र को शिक्षा देना भी पाप है वरन् हिन्दु या मुसलमान धर्म की आड़ में ये सब करते है वस्तुतः ये कमजोरी हमारी नही है ये कमजोरी अंग्रेजो की उलटवादी नीति और फूट डालो और राज्य करो की नीति की है। उसने भारत को न जाने कितने वर्गो, संम्प्रदायों, फिरको में बाँट दिया। किसी भी देश की मूलभूत आधारशक्ति होती है नारी की स्थिति लेकिन अंग्रेजो ने इसी पर चोट किया। भारतीय नारियों को वे आधुनिक बनाने का दिखावा तो करते रहे लेकिन किया कुछ नही जो कुछ भी हुआ वह नारियों नें नारियों से मिलकर अपनी शक्ति से हासिल किया और ये एक अच्छी शुरूआत थी लेकिन बाद में नारियों के हक के लिये नारी खड़ी होती कम दिखाई पड़ी। ये सर्वेक्षण का विषय हो सकता है कि आज नारी कहीं नारी की ही सबसे बड़ी दुश्मन तो नहीं है और जब कभी नारी को नीचा दिखाया जाता है तो अक्सर उसमें नारी का ही हाथ होता है और नारी ही, नारी की दुश्मन बन गई है ऐसा क्यों हुआ?[2]

आइये जरा अतीत की ओर चले आद्य ऐतिहासिक काल शब्दतः नारी का ही जयघोष करती है, वैदिककाल में तो नारी को जायदेस्तम भी कह दिया गया, अर्थात नारी ही गृह है। लेकिन इसके बाद कमोवेश, नारी की स्थिति और सम्मान दोनों में गिरावट आने लगी सो इसलिये हम नारी के अवमुल्यन के लिये अंग्रेजो को जिम्मेदार नही ठहरा सकते। हां वे दूसरे देश के थे तो उन्होंने नारी उत्थान के लिये कोई विशेष प्रयास नही किया। स्वयं भारत गुलामी की दास्तां की चक्की में पिस गया था। फिर नारी उससे कैसे बचती। हालांकि अंग्रेजो के समय कुछ शैक्षणिक और सामाजिक सुधार हुए। अंग्रेजो की शिक्षा पद्धति, बाबूगिरी वाली शिक्षा पद्धति से हम कैसे किसी नई चीज को होने की कल्पना कर सकते हैं। नारी जब खुद नारी का सम्मान करना सीख जाएगी तो नारी जागरण अपने आप संभव हो जाएगा। आज नारी, नारी की शक्ति तो है लेकिन उसके बावजूद नारी की मुसीबतों के पीछे अमूमन नारी ही है। यदि भारतीय नारी जागरूक और सजग हो जाए तो ऐसे में प्रभावकारी शक्ति स्त्री के पास ही होगी।[2] यही दुर्भाग्य है कि ऐसा नही है, नारियों को नारी के लिये अभिशाप बन चुके दस्तूर और विवादों वंश और परम्पराओं को खत्म करने की पहल करने के लिये सबसे पहले नारी को ही आगे बढ़ना होगा और भ्रूण हत्या, बालिका वध, अल्प वयस्क विवाह (बाल–विवाह), मद्य निषेध जैसी चीजे करनी होंगी। तभी इसके नतीजे अच्छे आएगे।

नारी को यह बात समझनी होगी कि आज आइने ने फिर दोहराया है कि तेरी आंखो में नमी क्यों है तू नारी है तो क्या हुआ राहें हक में कमी क्यों है।'' नारी को हमेशा याद रखना होगा कि बांधकर तूफान अपनी मुठ्ठीयों में हम चले दोपहर के सूर्य जैसे इस धरा पर हम जले।

विश्व इतिहास इस बात का गवाह रहा है कि हमेशा जिन्दा कौम ही तरक्की करती है। हर कौम हर जाति और उन्हीं राष्ट्रों के नागरिको ने इतिहास रचा है जो अपने लिये स्वयं उठे खड़े हुए है तो इस बात से यह स्पष्ट है कि नारी जागरण के लिये महिलाओं को स्वयं के प्रयास करने पड़ेंगे। ब्रिटिशकाल में नारी जागरण के समर्थन में महिलाओं की भूमिका कमोवेश उतनी नजर नही आती जितना उसे होना चाहिए था। एस.सी. दुबे अपने पेपर अंक 1973 में लिखते हैं कि नारी जागरण में महिला सहभागीता और भागीदारीता बहुत कम रही है और अभी तक मैनें अपने शोध के दौरान यह पाया कि ब्रिटिशकाल जहां भारत के हर क्षेत्र एवं हर वर्ग के लिये एक अभिशाप बन गया था। लेकिन महिलाओं के लिये उनकी पुर्नमुक्ति का वरदान बनकर आया था। नारी जागरण के प्रयास भी ब्रिटिशकाल में काफी हुए लेकिन महिला सहभागीता अत्यन्त कम होने की वजह से उसका प्रभाव पूर्णतया निखर के नही आया और इस बात से यह सबक लेना चाहिए कि महिलाओं के पक्ष में क्रान्ति आयेगी या उनके हालात सुधरेंगे तो सबसे बड़ी भूमिका महिलाओं की स्वयं की होगी तभी समाज में सार्थक बदलाव आयेगा।[3]

पुराने आन्दोलनों की राख से हमने देखा कि यदि वे असफल हो गये तो क्यों असफल हो गये। क्योकि आपकी लड़ाई कोई दूसरा नही लड़ सकता वो तो खुद आपको लड़नी होगी और पूरी ताकत के साथ लड़नी होगी। सबसे बड़ा आश्र्चयचकित कर देना वाला तथ्य भारत के संदर्भ मे यह है कि भारत का वैदिक युग महिलाओं के संदर्भ में महिलाओं का स्वर्ण युग माना जाता है। जिस देश में नारी को ''जायंदेस्तम्भ'' अर्थात सम्पूर्ण गृह ही बता दिया हो उस देश में महिलाओं का इतना पतन यह सबसे बड़ा आश्चर्य में डालने वाली बात है। घरेलू तौर पर गृहिणी और माँ के रूप में महिलाओं का सम्मान ब्रिटिशकाल में भी रहा। लेकिन महिला को महिला के स्तर पर अनेक समस्याओं और अपनी स्थिति में पतन के सबसे बुरे दौर से गुजरना पड़ा।[3] लेकिन कहा जाता है ना कि रात जब सबसे गहरी होती तो सुबह आस–पास ही होती है। नारी के गिरावट के निम्नतम बिन्दु ने यह तय कर दिया था, यह स्थिति और ज्यादा दिन चलने वाली नहीं है, इसमें सुधार आवश्यक है और वो होकर रहेगा। अतः नारी जागरण एक सच्चाई के तौर पर समाज में उभरा जिसमें महिलाओं की भूमिका विशेष रही।

नारी जागरण सिर्फ अंग्रेजो के समय में एक चुनौती का विषय नही रहा वरन् आजादी के बाद भी नारी जागरण एक यक्ष प्रश्न की तरह स्वतंत्रता के बाद की समस्याओ में सबसे ज्वलंत बनकर अपनी मौजूदगी का एहसास करा रहा है और आज भी महिला समर्थन के दरकार के अवचित्त को सही साबित कर रहा है। आजादी पूर्व और आजादी के पश्चात् ने यह साबित कर दिया है कि हमारा आज तक प्रयास अब तक का संघर्ष काफी नहीं रहा है और इसने इस बात की महत्वता को रेखांकित कर दिया है कि जब तक महिलाओं की भागीदारीता इन आन्दोलनों में नही बढ़ती तब तक नारी जागरण एक दिवस्वप्न नही रहेगा।[4]

महिला आन्दोलन भारत में अपने सही रूप में 1920 के दशक में उभार पर आया। 19वीं शताब्दी में सामाजिक सुधार के लिये जो आन्दोलन चला कही न कही उसी के आधार पर या उसी के अंश से भारत में महिलाओं का आन्दोलन भी निकला। महिला आन्दोलन की प्रगति उस दौरान हुई जब समुचे भारत का रूख एक उच्च स्तरीय राष्ट्रीयता का जन्म दे रहा था। जो स्वतंत्रता आन्दोलन को बहुत सारे आयाम दे रहा था। ऐसे ही समय में महिला आन्दोलन ने भी अपने तमाम रंग बिखेरने शुरू किये। जो कि इस बात को सबसे ज्यादा महत्व प्रदान करती है वह यह कि भारत में बड़े ही शुरूआती समय में महिलाओ ने अपने लिये संवैधानिक प्रत्याभूत और अधिकारों की मांग की। उन्होंने महिलाओं के लिये पुरूषों के समान अधिकार की मांग रखी। इन सबके बावजूद महिला आन्दोलन ने स्वतंत्रता आन्दोलन से अलग अपनी कोई बड़ी छवि नही निर्मित की। महिलाओं की लड़ाई ज्यादातर संवैधानिक ही बनी रही। वह सड़कों पे उतरकर मूलभूत मुद्दों की लड़ाई नहीं बन सकी। दुर्भाग्य से उन दोनो बातों को आज तक प्रश्न चिन्ह के रूप में बनाये रखा गया और अभी भी इन बड़े प्रश्नों के समाधान की राह खोजी जा रही है।

भारत में समान नागरिक संहिता जिसको बिना किसी विवाद के भारत की स्वतंत्रता के साथ ही लागू कर दिया जाना चाहिए था। वह समान नागरिक संहिता भी इतने अधिक विवादों में घिर गई कि वह कभी मूर्त रूप ले पायेगी, यह प्रश्न आज अपने जवाब कि तलाश कर रहा है। दूसरा स्वतंत्रता पूर्व से ही हमारी राजनीतिक आकाओं ने महिलाओं को इस बात के दिवा स्वप्न दिखाये थे कि संवैधानिक संस्थाओं में उचित रूप महिलाओं को स्थान दिया

जायेगा ताकि वे अपनी बात आासानी से रख सके और इस भारत को सही मायने में भारत बनाया जा सका भारतीय संवैधानिक संस्थाओं में उचित आरक्षण ओर समान नागरिक संहिता दोनो आजादी के 66 साल बाद भी दूर की कोड़ी लगते है। महिला आन्दोलन ने ब्रिटिशकाल में या उसके बाद क्या हासिल किया इस बात को समझने के लिये कही–न–कही इसकी लम्बी ऐतिहासिक जड़ों को समझना पड़ेगा। कलकत्ता विश्वविद्यालय की सुमित सेन(समिता सेन) लिखती है कि within the womens movement cleavager that reflact divisions of cast, class and community among women to under stand the implication.[5]

भारतीय महिलाओं का आन्दोलन शब्द ब्रिटिशकाल में कई आयामों को जन्म देता है। सामान्यता यह राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से महिलाओं की अपनी तलाश का आन्दोलन माना गया था। इस आन्दोलन में Divercity, Differences और तमाम तरह के Conflicts रहे है। इसलिये ब्रिटिशकाल में नारी जागरण को समझना और उसके विकास को रेखांकित करना उतना सरल नहीं है कि जितना कि समझ लिया जाता है। वस्तुतः 18वीं शताब्दी के अन्धकारपूर्ण और अराजकता से भरे वातावरण में महिलाओं की स्थिति को अधिक दयनीय बना दिया और ऐसे ही समय में भारत के बुद्धिजीवी वर्ग का एक हिस्सा नारियों की दशा में सुधार के लिये आवाज उठा रहा था। क्योंकि इनका दृढ़ विश्वास था कि नारी की दशा में सुधार किये बिना देश का सुधार असंभव है। नारी जागरण के प्रयासों के दौरान एक वर्ग ऐसा भी था जिसने आर्थिक समृद्धि के लिये भी नारी का सहयोग आवश्यक समझता था।[6]

20वीं शताब्दी की शुरूआत में गाँधी जी ने देश की आजादी की लड़ाई के साथ ही महिलाओं की आजादी और समानता की लड़ाई को भी जोड़ दिया, क्योंकि देश की इस आधी आबादी के मैदान में आए बिना राजनैतिक आजादी मिलना मुश्किल था। इस समय देश को जो प्रबल महिला नेता मिली उनमें सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, कमला देवी चट्टोपाध्याय, दुर्गाबाई देशमुख, धनवन्ति रामाराव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी समय महिलाओं की संस्थाएँ भी शुरु हुई, जिनमें अखिल भारतीय महिला परिषद (1926) वीमन्स कौंसिल (1920) तथा राज्य स्तरीय संगठन जैसे गुजरात में ज्योति संघ (1934) और महाराष्ट्र में हिन्दू वीमन्स रेस्क्यू सोसाइटी (1927) व रतन टाटा इंडस्ट्रियूट (1938) प्रमुख है। (1917) से (1947) के बीच देश में कई महिला संगठनों का एक साथ उदय हुआ। इन सभी संगठनों की गतिविधियों भी विस्तृत थी।[7] इससे महिला नेतृत्व में और अधिक निखार आ गया था। महिला उत्थान की गतिविधियों को भावनात्मक और सतर्कता से उठाया जाने लगा था। आजादी के राजनैतिक आंदोलन में महिलाओं के जुड़ जाने से महिलाओं को नई ताकत मिली थी। अब वे अपने उत्थान की लड़ाई का नेतृत्व स्वयं करने के काबिल हो गई थीं। इस तरह एक वास्तविक महिला आंदोलन शुरू हुआ। इन महिलाओं ने स्त्री पुरुष समानता को अपने आंदोलन का विषय बनाया क्योंकि असमानमा ही अब तक होने अत्याचारों और हिंसा की जड़ थी। हालांकि, यह आंदोलन शुरू में देश के कोने–कोने तक नहीं पहुंचा और उच्च वर्ग की पढ़ी–लिखा महिलाएँ ही इसमें शामिल थी। दूसरे यह आजादी के राष्ट्रीय आंदोलन के साथ इस तरह घुल–मिल गया था कि इसे अलग से देख पाना मुश्किल था। बीसवीं सताब्दी की तीसरा दशक आते–आते तो देश में आजादी की लहर इतनी तीव्र हो गई थी कि किसी भी आंदोलन को अलग से उठा पाना न तो संभव था और न उचित ही था।

महात्मा गाँधी को श्रेय जाता है कि, उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में ज्यादा महिलाओं को शामिल किया। वह पहले जन नायक थे, जिन्होंने एक संगठित आंदोलन में महिलाओं की ताकत और महत्व को बल दिया। खादी ने हमारे देश में समानता का एक ऐसा रिश्ता कायम किया जिसने गाँव की बुनकर महिलाओं को देश की उच्च व उच्च मध्यम वर्ग की महिलाओं से जोड़ा। गाँधी जी ने नेतृत्व में महिलाओं ने ही सबसे पहले स्वदेशी अपनाकर विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया। उन्होंने महिलाओं को प्रोत्साहित किया कि वे अपने लिए सिर्फ कपड़ों और गहनों का ही चुनाव न करें, बल्कि नई–नई गतिविधियों और एक नई जिदगी की भी की तलाश करें। 1920 में स्वदेशी आंदोलन के साथ की अत्यन्त पारम्परिक परिवारों की महिलाएँ भी घूँघट हटाकर बाहर आई। उन्होंने दास, जाति प्रथा और वर्ग, पूर्वाग्रहों के खिलाफ उठाई। अस्पृश्यता निवारण के लिए भी महात्मा गाँधी ने महिलाओं का ही सहारा लिया। मृणाल पांडे के अनुसार, ''1931 में कराची में, काग्रेंस के वार्षिक अधिवेशन के दौरान महात्मा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी ने भारतीय महिलायों के लिए राजनैतिक समानता का प्रस्ताव पास किया। इस समय तक हमारी यूरोपीय बहनें वोट का अधिकार भी नहीं पा सकी थीं।''[8]

आजादी के बाद महिलाओं की सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक और न्यायिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। यह बदलाव अप्रत्याशित नही है। महिलाओं की स्थिति में बेहतरी का प्रश्न उन्नीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश से ही सामाजिक सुधार आन्दोलन के केन्द्र में रहा जब राजाराम मोहन राय ने सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करना शुरू किया। उन्नीसवी सदी के तीसरे और खाससकर चौथे दशक में महिलाओं ने सक्रियता से आजादी के आंदोलन में भाग लिया। गांधी जी ने तीस के दशक के मध्य में महिलाओं और आजादी के लिए बहादुरी से लड़ने वाली योद्धा मृदुला साराभाई से कहा, ''मैंने भारतीय महिलाओं को रसोईघर से बाहर लाने का कार्य किया है, अब आपको (महिला कार्यकर्ताओं को) उन्हें वापस लौटने से रोकने का काम करना है।''[9] यह कोई विचारहीन आहवान नहीं था। राष्ट्रीय आंदोलन ने महिलाओं को राष्ट्रीय भावनाएँ रखने वाली राजनीतिक हस्तियाँ माना जो संघर्ष और बलिदान में पुरुषों से अधिक नहीं तो कम से कम उनके बराबर तो साबित हुई। इस प्रकार सामाजिक गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी के बारे में गांधी जी ने स्पष्ट राय व्यक्त की।

यदि महिलाएँ जुलूसों में मार्च कर सकती हैं, कानून का उल्लंघन कर सकती हैं, जेल जा सकती हैं और वह भी बिना परिवार के पुरुषों के संरक्षण के तो– वे नौकरियाँ भी कर सकती हैं, उन्हें वोट देने का अधिकार है, और यदि संभव हो तो पैतृक संपत्ति का भी। बीस के दशक में महिलाओं द्वारा विशाल जनसंघर्षों में राजनीतिक भागीदारी ने ऐसी संभावनाएँ खोल दी, जो सामाजिक सुधारों की पूरी सदी ने भी नहीं खोली थी। महिला की छवि उन्नीसवी सदी में न्याय की हकदार से बीसवी सदी के आरंभ में राष्ट्रवादी पुरुषों की समर्थक और फिर तीस और चालीस के दशक में उनकी सहयोगिनी में बदल गई। आजादी के बाद महिलाओं ने अपनी अलग और स्वतंत्र छवि प्रस्तुत की।

आजादी के बाद पिछले कठिन संघर्षों के नतीजों को मजबूती प्रदान करने का समय आया इसलिए स्वाभाविक रूप से नारियों का ध्यान कानूनी और वैधानिक अधिकार हासिल करने की ओर गया। संविधान ने महिलाओं को पूर्ण समानता देने का वायदा किया। उसने कई वर्षो पहले राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा किये गये वायदे को पूरा किया। महिलाओं को पुरुषों के बराबर बिना शिक्षा संपत्ति या आय के भेदभाव के वोट का अधिकार मिला। यह एक ऐसा अधिकार था जिसके लिए पश्चिमी देशों में महिला मताधिकारवादियों ने लंबी और कठिन लड़ाई लड़ी थी लेकिन भारतीय महिलाओं ने इसे एक पल में हासिल कर लियज्ञ[10]

आजादी के बाद हिन्दू–क्रोडबिल को राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद समेत कई वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं एवं पुरातनपंथियों के तगड़े विरोध के कारण पास नहीं किया जा सका। उन्हें यह भय था कि अगर यह बिल पास हो गया तो समाज से पुरुष वर्चस्व समाप्त

हो जायेगा। आगे चलकर बिल के विभिन्न हिस्सों को अलग–अलग एक्टों के रूप में पास किया गया– हिन्दू विवाह एक्ट, हिन्दू उत्तराधिकार एक्ट, हिन्दू नाबालिक एवं अभिभावक एक्ट और गोद लेने तथा खर्चा देने संबंधी अधिकार। हिन्दू महिलाओं को कानूनी अधिकारों के दायरे में ले आना पर्याप्त तो नहीं था, लेकिन एक बड़ा कदम अवश्य था। यह सरकार द्वारा अन्य धार्मिक समुदायों तक कानूनी अधिकार पहुंचाने के तीखे विरोध से स्पष्ट हो जाता है। शहबानों केस इसका एक अच्छा उदाहरण है। हिन्दू कानून में सुधार के चालीस वर्षो बाद 1985 में सुप्रीम कोर्ट ने एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला शाहबानों को खर्चे के लिए एक छोटी सी रकम की इजाजत दी। इसी पर पुरातनपंथी पुरुष वर्ग में हंगामा मच गया। राजीव गांधी सरकार पर इतना दबाव डाला गया कि उन्हें झुकना पड़ा और सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के निषेध के लिए एक बिल लाना पड़ा। हमारे समाज का पुरुष वर्ग अपनी प्रभुत्वशाली सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था, यही कारण है कि नेहरू ने नागरिकों के लिए समान सिविल कोड नहीं बनने दिया। हिंदू समाज की तुलना में मुस्लिम समाज की महिलाएँ और पीछे रह गयीं। इसका प्रमाण तीस साल बाद हुए शाहबानों मुकदमें में मिलता है।

आजादी के बाद राष्ट्रीय आंदोलन की विभिन्न शक्तियाँ अपने अपने रास्ते पर चल पड़ी, इसके कारण महिला आंदोलन ने भी विविध रूप धारण कर लिया। कई महिला नेताओं ने सरकार द्वारा आरम्भ किए गए तथा महिला कल्याण संबंधी अन्य संस्थागत गतिविधियों में भाग लिया। इनमें देश के विभाजन के समय दंगे और पैमाने पर लोगों के स्थानान्तरण के फलस्वरूप खोई हुई या छोड़ दी गई महिलाओं की खोज और पुनर्वास के काम, शहरों की कामकाजी महिलाओं के हॉस्टल स्थापित करने और महिलाओं के वोकेशनल ट्रेनिंग केन्द्र निर्मित करने के काम थे। 1954 में कम्युनिस्ट महिलाओं ने अखिल भारतीय महिला सम्मेलन से बाहर निकल अपना अलग संगठन भारतीय राष्ट्रीय महिला फेडरेशन बनाया। यह एक पार्टी संगठन बन गया, न कि महिलाओं का व्यापक संयुक्त आधार, शायद इसी कारण पचास और साठ के दशकों में महिला संघर्षो के खास चिन्ह नहीं मिलते हैं। इस कारण यह विचार पनपा कि आजादी के बाद सत्तर के दशक में नई पहल तक कोई महिला आंदोलन हुआ ही नहीं। लेकिन ऐसी समझ यह सच्चाई नहीं देख पती कि तीव्र संघर्षों के बाद आंदोलन के अभिन्न अंग के रूप में शांत सृजनात्मक कार्यो और सुदृढ़ीकरण की मंजिले आती हैं। आजादी के बाद भारतीय महिला आंदोलन ठीक ऐसे ही दौर से गुजर रहा था।[11]

महिला आंदोलन की एक और धारा जो 'स्वायत्त' दलों का आंदोलन कहा गया। इन आंदोलनों का प्रसार सत्तर के दशक के मध्य में शहरी इलाकों में हुआ। इनमें से कई ऐसे आंदोलन थे जो माओवादी या नक्सलपंथी आंदोलनों से प्रभावित थे। सत्तर के दशक के आरम्भ में नक्सलवाद के पतन के फलस्वरूप बहसें छिड़ गई और नये महिला संगठन थे–हैदराबाद में 1974 में उस्मानिया यूनिवर्सिटी का प्रगतिशील महिला संगठन, पुणे में पुरोगामी स्त्री संगठन और 1975 में बंबई का स्त्रीमुक्ति संगठन। 1975 को संयुक्त राष्ट्र ने विश्व महिला वर्ष घोषित किया। इसके फलस्वरूप 1975 में महाराष्ट्र में संगठनों की गतिविधियों में तेजी आई। पार्टियों पर आधारित और स्वतंत्र संगठनों ने पहली बार 8 मार्च को विश्व महिला दिवस के रूप में मनाया। उसी वर्ष पुणे में एक महिला सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें सारे राज्य भर से माओवादी ग्रुप, समाजवादी और रिपब्लिकन पार्टियाँ मा.क.पा. और लाल निशान पार्टी शामिल हुई।[12]

1975 में आपातकाल की घोषणा के बाद नारी संगठनों की गतिविधियों का एक और दौर शुरू हुआ। मानुषी नामक पत्रिका का संचालन शुरू किया गया जो आज भी मधु किश्वर के सफल नेतृत्व में निकलता है।

जनता पार्टी की महिलाओं ने, जो अधिकतर सोशलिस्ट थीं, महिला दक्षता समिति का निर्माण किया। उन्होंने दहेज के खिलाफ अभियान चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की इसमें दिल्ली स्थित 'स्त्री संघर्ष' भी सक्रिय था। अपने अधिकारों को लेकर सजग नारियों ने दहेज संबंधी उत्पीड़न और उससे जनित मृत्यु का प्रश्न 1979 में बड़े पैमाने पर उठाया। इस दिशा में रैलियों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों आ आयोजन किया गया, खासकर महिलाओं को पीड़ित करने वालों के घरों के सामने। सी.पी.एम. के महिला संगठन जनवादी महिला संगठन और 1981 में स्थापित ऑल इंडिया डेमोक्रेटिक वीमेंस एसोसिएशन ने इस प्रश्न पर घर–घर जाकर अभियान चलाया। दहेज पाबंदी (1961) को संशोधित करने वाला एक बिल संसद की विशेष संयुक्त समिति को भेजा गया। इस समिति ने सारे देश का दौरा किया और 1981 तथा 1982 के दौरान विभिन्न महिलाओं ने और संगठन की कार्यकर्ताओं ने इसके समक्ष अपने बयान पेश किये। 1984 में दहेज संबंधी अपराधियों को दण्ड देने का कानून पास किया गया तथा कुछ अन्य साधारण कानून बाद में लागू किये गये। यह सब महिलाओं के अन्दर आयी अधिकार सजगता से सम्भव हो सका।[13]

मानवीय सभ्यता के विकास यात्रा की इस सुदीर्घ परम्परा से साबित होता है कि मध्ययुग में महिलाओं के लिए कठिन दौर था। इस युग में महिलाएँ पुरुषों की सम्पत्ति बनी। महिलाओं के स्वाभिमान को आहत करना जैसे पुरुषों के पौरुष की निसानी बनी। पराजित जनों की स्त्रियों से अपमान जनक व्यवहार करना, उनके साथ जबरजस्ती यौनाचार करना, मानसिक, शारीरिक प्रताड़ना देना आदि जैसे आचरण पुरुष अपने अहं की तुष्टि के लिए करते है। सहचरी रूप जीवा बन गयी पर स्त्री प्रताड़ना जैसे पौरुष का मानदण्ड बन गया।

19वीं एवं 20वीं सदी के प्रारम्भ में भारत में हुए धर्म सुधारकों ने भारतीय समाज के उत्थान के लिये भारतीय नारी के उत्थान को आवश्यक बता दिया था। निश्चित रूप से इससे भारतीय नारी समाज में कही न कही जागरण की भावना आयी वरन् भारतीय नारी समाज अपने अधिकारों के प्रति सजग भी होने लगा था। 19वी सदी में समूचे भारत में आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में व्यापक स्तर पर परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा था। इतिहासकारों ने इसको भारतीय पुर्नजागरण नाम दिया जिसने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में रूढ़िवादी परम्पराओं का जोरदार खण्डन किया और निष्क्रिय रूढ़ीवादी परम्पराओं की स्पष्ट तौर पर चुनौती दी गई। भारत की सांस्कृतिक पुर्नजागरण को मध्ययुग की समाप्ति और आधुनिक युग के आगमन के रूप में देखा गया और समाज के हर क्षेत्र में एक नयी ताजी हवा के झोंके की तरह नये विचारों ने दस्तक दी और ऐसे ही माहौल मे स्त्रियों की दयनीय स्थिति की तरह भी ध्यान गया और यह स्पष्ट रूप से माना गया कि यदि स्त्रियां की दशा नही सुधरती है तो, न तो भारत की दशा किसी तरह सुधरेगी न उसका किसी तरह का कल्याण होगा, इसलिये पुर्नजागरण के अग्रणी नेता राजा राम मोहन राय ने इस प्रचलित विचार का विरोध किया कि स्त्रियों में पुरूषों से बुद्धि कम होती है या स्त्रियो पुरूषों से नैतिक दृष्टि से किसी भी मामले में निक्रिय है। देवेन्द्रनाथ ठाकुर और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महान व्यक्तित्व भी उभरकर समाने आये।[7]

वर्ष 1850 ई. में विष्णुशास्त्री पंडित ने विधवा विवाह समाज स्थापित किया और उसके एक वर्ष बाद ही अर्थात 1851 में ज्योतिबा फूले और उनकी पत्नी ने पूना मे लड़कियों के लिये स्कूल खोला। इन चीजो ने उस जरूरी माहौल को बनाने का कार्य किया जिसमें स्त्री शिक्षा, स्त्री प्रगति, की न केवल बात की जा सकती थी वरन् उनके लिये आवष्यक रूप से वास्तविक धरातल पर भी कुछ किया जा सकता था। भारत के पितामह कहे

जाने वाले दादा भाई नौरोजी जिनका समाज पर अच्छा प्रभाव था, उन्होंने भी नारी जागरण के लिये अनुकुल माहौल बनाने का कार्य किया। स्वामी दयानंद सरस्वती और उनकी संस्था आर्य समाज ने पुरजोर तरीके से महिलाओं को हर क्षेत्र में न केवल भागीदारीता देने की बात की वरन् दयानंद सरस्वती ने धार्मिक दृष्टि से महिलाओं की निम्न स्थिति को अस्वीकार करते हुए उन्हें यज्ञ करने यज्ञोपवीत और गायत्री मंत्र जैसे मंत्रों को भी साधीकार पढ़ने का अधिकार देकर धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियां और पुरूषों में अन्तर को समाप्त किया।[14]

भारत के महिला आन्दोलन में ब्रिटिशकाल की विदेशी महिलाओं का योगदान भी सराहनीय रहा हैं। विदेशी महिला श्रीमती डॉना मार्कससेन की ही बात कर ले तो इन्होनें कलकत्ता तथा हैरामपुर में लड़कियों के लिये स्कूलों की स्थापना करके नारी शिक्षा के क्षेत्र में अपना विशिष्ट योगदान दिया और सबसे दिलचस्प बात यह थी, तात्कालीन गवर्नर जर्नल लार्ड डफरिन की पत्नी लेडी डफरिन ने भी डॉना मार्कससेन के प्रयासो का पूर्ण समर्थन किया।[14]

औपनिवेशिक सामाजिक ढ़ाँचे में महिला की भूमिका महिला आन्दोलनों के प्रभाव पश्चिम से, पश्चिमी जगत से अलग रहे है। भारत में महिलाओं की भूमिका अलग तरीके से सामने आयी और खासकर जब एक नारीवादी संगठन ने महिलाओं की स्थिति पर एक विस्तृत सर्वे किया । यह रिपोर्ट कहती है कि 18वीं, 19वीं शताब्दी में महिलाओं के ऊपर अत्याचार, घृणा और उनका उत्पीड़न बदस्तुर जारी था और इसमें ठहराव या बदलाव की गुनजाइश तभी थी जब महिलाओं के हक में कोई बड़ा आन्दोलन खड़ा किया जाये।

पश्चिमी नारी आन्दोलनों के विपरीत भारत में नारी आन्दोलनों का नेतृत्व पुरूषों ने किया और महिलाओं ने उसमें बहुत बाद में हिस्सा लिया, इन पुरूष नारी समाज सुधारकों के प्रयासो से नारियां की स्थिति में निश्चित रूप से सुधार आया। जैसे– सतीप्रथा का उन्मूलन किया गया, बाल विवाह की प्रवृत्ति पर रोक लगाने की दिशा में सार्थक प्रयास हुए, सबसे बड़ी बात राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारकों के प्रयासों से महिला विधवाओं की स्थिति का उल्लेखनीय सुधार हुआ। भारतीय विधवाओं जिनको उनके पति की मृत्यु के बाद उनका अस्तित्व ही नकार दिया जाता था। निश्चित रूप से ब्रिटिशकालीन नारी जागरण में इस तरह की महिलाओं की स्थिति में सुधार हुए और इनमें सम्मान और अपनी पहचान दोनों प्रदान किये गये, विधवा विवाह के समर्थन में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयास सार्थक रहे, भले ही जमीनी स्तर पर यह प्रभाव बहुत बड़ा आकार नहीं ले सका। महिला शिक्षा के प्रोत्साहन से महिलओं में एक नव जागृति, नव उत्साह और कुछ नया करने की तमन्ना रंग भरने लगी। नारी शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि नारी अपने संवैधानिक अधिकारो के प्रति जागरूक हो गयी और वो अपने अधिकारों के लिये ही नही बल्कि महिला सम्पत्ति जैसे मुद्दों के लिये भी उन्होंने कानूनी लड़ाई लड़ी और सारे भारत की नारियों को इस मामले मे जागरूक किया। 19वीं सदी की शुरूआत में महिलाओं के मुद्दों के राजनीति को गरमाकर रखा था जिसका नतीजा यह हुआ कि सभी की नजरें महिलाओ से सम्बंधित मुद्दों पर गई और इसका परिणाम यह हुआ कि महिलाओं के पक्ष में सुधार शुरू हुए और नारी जागरण की भूमिका बनने लगी और नारी जागरण एक बहुत बड़ा उद्देश्य बन गया और धीरे–धीरे भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ भी जुड़ गया।[15]

19वीं शताब्दी के शुरूआत में जहां पुरूषों ने ही महिलाओं के पक्ष में आवाज उठानी शुरू की। लेकिन अब धीरे–धीरे इन प्रयासों में उनकी पत्नियां, बहनें, लड़कियां और हर तरह की महिला इस आन्दोलन में सम्मिलित होने लगी और नारी जागरण को एक सही अर्थ मिल गया। उस समय नारी जागरण के लिये एक शब्द इस्तेमाल किया गया था। इस शब्द ने नारी आन्दोलन और उसके विजन के लॉजिकली और जमीनी स्तर पर भी एक बड़े रूप में खड़ा कर दिया। अब महिलाओं को नज़र अन्दाज करना न तो समाज के बस की बात थी और न ही अंग्रेज सरकार के बस की बात थी।[15]

औपनिवेशिक तौर ने आधुनिकता को जन्म दिया था। आधुनिकता अपने साथ समानता और व्यक्तिगत अधिकार को भी लेकर आयी थी। साथ ही साथ आधुनिकता के प्रभाव से राष्ट्रवाद का जन्म हो रहा था और इस राष्ट्रवाद के साथ–साथ जाति और लिंग भेदी आन्दोलन भी अपनी जमीन तैयार कर रहे थे। भारत में नारी जागरण का पहला दौर पुरूषों द्वारा शुरू किया गया। निश्चित रूप से हमें यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं इस आन्दोलन ने बहुत कुछ सकारात्मक परिणाम भी प्राप्त किये थे, जैसे–सती प्रथा, उन्मूलन, विधवा पुर्नविवाह, बाल–विवाह पर अंकुश लगाना, के साथ–साथ इन्होंने महिलाओं की अशिक्षा और निरक्षता को कम करने की ओर ध्यान दिया और इसके लिये यदि जरूरत पड़ी तो उन्होनें संघर्ष करने में कोई हिचक नहीं रखी। हालांकि महिलाओं के स्तर में सुधार लाने का प्रभाव थोड़ा सा धीमा पड़ गया क्योकि भारत में उसमें राजनीतिक आन्दोलन भारत को स्वतंत्र बनाने के लिये एक बड़ा रूप लेने लगा था। महिलाओं के इस दौर को हम पहला दौर कह सकते है और इसको 1850 से 1915 के कालखण्ड में से रखा जा सकता है।[7]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः ये कहा जा सकता है कि नारी का शोषण कहीं न कहीं किसी न किसी स्तर पर हुआ है और इसके प्रमाण हमें तमाम उर्दू और फारसी दोनों भाषाओं में मिलते है। नारी का शोषण किसी और ने नही बल्कि नारी ने ही सर्वाधिक किया है। ज्यादातर मामलो में नारी यदि चाहे खुद ही अपना फैसला लेकर क्रियान्वित कर सकती है लेकिन दुर्भाग्य से भारत में नारियां संगठित नहीं है और परम संतोषी है। इसलिये पति के तमाम झापड़ खाने के बाद भी वह उसका प्रचार नही करती और नारी पूर्व से पुरूष को सम्मान देती आ रही है।

सन्दर्भ

1. डॉ. जी.वी. मधुकर – भारतीय नारी और उसका त्याग, कल्पना पब्लिकेशन, 2006, पृ. 41
2. डॉ. के.एम. मालती – स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, पृ. 88
3. डॉ जी.वी. मधुर – भारतीय नारी और उसका त्याग
4. प्रो. कमला प्रसाद – वसुधा, जुलाई 2007, पृ. 158
5. सुमित सेन – उद्धत, आलेख स्त्री स्मिता : उभरते सवाल, शोध 2003, पृ. 87 संपादन डॉ. श्याम सुन्दर
6. जयवर्धन – सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, पृ. 341
7. राधाकुमार – स्त्री संघर्ष का इतिहास
8. डॉ. सुनीता सक्सेना – महिला उपन्यासों की सामाजिक चेतना, आश पब्लिकेशन कम्पनी, 2004 पृ. 219
9. प्रो. उषा मेहता के साथ मृदुला मुखर्जी के इंटरव्यू पर आधारित
10. राधाकुमार – स्त्री संघर्ष का इतिहास, पृ. 317
11. डॉ. जी.वी. मधुकर – भारतीय नारी और उसका त्याग, पृ. 421
12. विमला मेहता – आज की महिलाएँ, पराग प्रकाशन दिल्ली 1975, पृ0 128
13. कुसुम त्रिपाठी – समाजवादी देशों महिलाएँ : एक सिंघावलोकन, संगिनी प्रकाशन, मुम्बई, 2007, पृ. 90
14. डॉ. के.एम. मालती – स्त्री विमर्श भारतीय प्रतिप्रेक्ष्य में

15. सोनिमा गुप्ता – सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, पृ. 187